श्री रामकृष्ण

वाक्य सुधा

श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम,
कानपुर

श्री रामकृष्ण

वाक्य सुधा

श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम,

कानपुर

प्रथम बार १०००] १९३९. [मू० ।)

प्रकाशक :-
स्वामी नित्यानन्द,
श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम,
रामकृष्ण नगर,
. कानपुर

मुद्रक
भोलानाथ चौधरी
महेन्द्र प्रेस, लाटूश रोड लखनऊ

विषय सूची

निवेदन

परमहन्स श्री रामकृष्ण देव के आविर्भाव से भारतवर्ष तथा समस्त सन्सार में एक नये युग का प्रारम्भ होता है। सर्व-धर्म-समन्वय के मूर्तविग्रह श्री रामकृष्ण के जीवन में प्रेम, पवित्रता तथा सत्य की जो अलौकिक छटा है और ज्ञान, कर्म तथा भक्ति का जो अपूर्व समावेश है, वह वर्तमान यह-सर्वस्व मानव समाज के चित्त में शान्ति तथा आनन्द को एक नवीन प्रेरणा देता है। उन्होंने अपने जीवन में सब धर्मों का साधन किया और यह प्रत्यत्न किया कि सभी धर्म उसी एक परमात्मा की ओर ले जाते हैं। सब धर्मों के इस एकत्व के सन्देश का प्रचार उनके यशस्वी शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने सन्सार के अनेक भागों में किया। और आज पूर्व तथा पश्चिम दोनों ही श्री रामकृष्ण के चरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं।

उनके दिव्य साधन-मय जीवन की आलोचना से और उनके सीधे सादे मीठे उपदेशों के मनन से मानव के तृषित हृदय को शान्ति मिलती है। प्रेम के अवतार श्री रामकृष्ण आज विश्व-वान्दित हैं और उनकी तथा उनके प्रिय शिष्य जगत-विख्यात स्वामी विवेकानन्द जी की वाणियां सन्सार की अनेक भाषाओं में अनुवादित हो गई हैं और हो रही हैं। हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है परन्तु यह खेद की बात है कि हिन्दी में इन ग्रन्थों का यथेष्ट प्रचार नहीं है। इसी अभाव को दूर करने के लिये श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम, कानपुर ने श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द सम्बन्धी पुस्तकों का हिन्दी में प्रचार करने का प्रयास किया है। यदि भक्तजनों को इस ग्रन्थ से शान्ति मिले और जन साधारण का कल्याण हो तो हम अपना श्रम सार्थक समझेंगे।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री नृपेन्द्र नाथ वन्दो-पाध्याय बी० ए० एल० टी० ने बहुत सहायता दी है। अनुवाद अधिकतर उन्हीं का है। इसलिये मैं

उन्हें धन्यवाद देता हूँ। लखनऊ 'महेन्द्र प्रेस' के मालिक श्री भोलानाथ चौधरी जी ने अल्प मूल्य पर तथा अथक परिश्रम से इस पुस्तक को छाप दिया है, मैं इस कारण उनका भी कृतज्ञ हूँ। इस पुस्तक की सारी आय प्रचार के काम में ही लगाई जायगी।

रामकृष्ण नगर कानपुर **स्वामी नित्यानन्द**



परमहंस श्री रामकृष्ण देव

ॐ

संक्षिप्त जीवनी

—:o:—

अनादिकाल से हमारी इस पुण्य भूमि भारत बसुन्धरा में अनेक आध्यात्मिक-ज्ञान-सम्पन्न श्रेष्ठ महापुरुष आविर्भूत होते रहे हैं। प्राचीन वैदिक साहित्य में शतशः ब्रह्मर्षि एवं राजर्षियों के नाम उपलब्ध हैं। परवर्ती काल में लोक-कल्याण के निमित्त श्रीराम, श्रीकृष्ण, बुद्ध, आदि अनेक अवतार हुए हैं। इसी प्रकार शङ्कर, रामानुज, बल्लभ, मध्व, चैतन्य आदि धर्माचार्यों ने समय समय पर धर्म की स्थापना की। रामानन्द, सूरदास, तुलसी, कबीर, नानक आदि अनेक महात्माओं ने सर्वसाधारण में भगवत्-प्रेम का प्रचार किया।

श्रीरामकृष्ण देव का आविर्भाव इन सब के पीछे हुआ। इनके जीवन में हमें पूर्ववर्त्ती आचार्य्य

महात्माओं के आध्यात्मिक अनुभव और साधन-प्रणाली का एक अपूर्व समावेश दृष्टिगोचर होता है। सनातन धर्म के विभिन्न भावों, मतमतान्तरों तथा अन्यान्य धर्मों के अनुसार साधना करके पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर इन्होंने यह प्रत्यक्ष सिद्ध किया कि सभी धर्मों से भगवान् शाक्षात्कार हो सकता है। इस लिए यह कहना युक्ति-युक्त है कि ये सर्वधर्म समन्वय के प्रकट रूप थे।

इनके पिता अति तेजस्वी, निष्ठावान, परम भक्त श्री क्षुदीराम चट्टोपाध्याय हुगली प्रान्तस्थ कामारपुकुर गाँव में निवास करते थे। क्षुदीराम जी की धर्मपत्नी श्री चन्द्रमणि देवी भी सरलता और दया की प्रत्यक्ष मूर्ति थीं।

क्षुदीराम जी ६० वर्ष की आयु में एक बार पितरों को पिण्ड देने के लिये गयाधाम में गये थे। वहाँ श्री भगवान गदाधर विष्णु जी ने स्वप्न में ज्योतिर्मय रूप में प्रकट होकर इनसे कहा था कि "मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ और तुम्हारे यहां

पुत्ररूप में अवतार लूँगा।" इधर चन्द्रमणि देवी कामारपुकुर में अपने घर के सामने वाले शिव-मन्दिर के निकट खड़ी हुई थीं, इन्होंने देखा कि शिवमूर्ति से एक दिव्य ज्योति-प्रवाह आकर उनमें प्रविष्ट हो गया और उसने उन्हें दिव्य-भाव से अभिभूत कर दिया। पतिदेव के लौटने पर उन्होंने इस अलौकिक घटना की बात कही तो क्षुदीराम जी ने भी गया मन्दिर में होने वाली दिव्य घटना उनसे कही और उन्हें आश्वासन दिया कि हमारे घर में दिव्य बालक का जन्म होगा।

तदनन्तर १७ फरवरी सन् १८३६ ई० को बुध के दिन हमारे चरित्रनायक ने जन्म ग्रहण किया। गया की घटना के अनुसार क्षुदीराम जी ने बालक का नाम गदाधर रक्खा। ये पाठशाला में सामान्य लिखना-पढ़ना सीखते हुए घर पर कुल देवता श्री रघुबीर जी की सेवा करने लगे। ये अत्यन्त मधुर स्वर से गाना गा सकते थे और जिस कथा या वार्ता को एक बार सुन लेते उसके सब गान कण्ठस्थ कर

लेते। बाल्य अवस्था में भी वे आनन्द में मग्न रहते थे। एवम् मुहल्ले के बालक, वृद्ध तथा स्त्रियाँ सभी उनसे प्रसन्न रहते थे।

उनके घर के पास गांव के जमींदार के मकान में एक धर्मशाला था, जहाँ साधु-महात्मा आया जाया करते थे। गदाधर वहाँ पर साधुओं के सङ्ग रह कर उनकी सेवा करते और कथा वाचक जब पुराण पाठ किया करते तब एकाग्र चित्त होकर सुना करते थे। उनकी धारणा शक्ति ऐसी तीव्र थी कि जो कुछ एक बार सुनते वह उनके मनमें अङ्कित हो जाता था।

खुदीराम जी की मृत्यु के बाद गदाधर अपने ज्येष्ठ भ्राता के साथ कलकत्ते गये। उस समय इनकी अवस्था १६ वर्ष के लगभग थी। कलकत्ते में इनके भाई की एक सन्स्कृत पाठशाला थी। इनके भाई उसमें इन्हें पढ़ाना चाहते थे। परन्तु इन्होंने उत्तर दिया कि "मैं खाली रोटी कमाने वाली विद्या पढ़ कर क्या करूँगा? मैं वह विद्या चाहता हूँ

ओ मेरे अज्ञान को दूर कर मुझे चिर आनन्द
द सके"।

रानी रासमणि ने कलकत्ते से ढाई कोस पर दक्षिणेश्वर में काली मन्दिर की स्थापना की थी। ३१ मई सन् १८५५ ई० को गदाधर के ज्येष्ठ भ्राता पण्डित रामकुमार जी मन्दिर के प्रथम पुजारी नियुक्त हुये थे। रानी रासमणि के जामाता मथुर बाबू पर गदाधर के दर्शन का बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने बड़ी प्रार्थना से इन्हें देवी जी की पूजा का भार लेने के लिये राजी किया। इस समय इनकी अवस्था २० वर्ष की थी। ये सदा तन्मय होकर पूजा किया करते थे और थोड़े ही दिनों में इनके मन की अवस्था कुछ और ही हो गई।

जगन्माता के दर्शन के लिये उनके हृदय में इतनी तीव्र व्याकुलता हो गई थी कि सारे दिन जगन्माता के चिन्तन में मग्न रहते थे और सूर्यास्त होने पर कहते थे कि 'हे माता! और एक दिन बीत गया किन्तु तुम्हारा दर्शन नहीं मिला।' ऐसा कह

कर रोते रोते पृथ्वी पर लोटने लगते और मिट्टी में माथा रगड़ने लगते। भगवद्विरह के अन्तस्ताप से उनके शरीर के ऊपर भी असह्य सन्ताप हुआ करता था। आहार और निद्रा नाममात्र को रह गई थी। एक दिन परम व्याकुल होकर माता से बोले—"यदि दर्शन न दोगी, तो आत्महत्या कर लूँगा।" और मन्दिर में टंगी हुई खड्ग को लेकर अपना गला काटने को तय्यार हो गये। उसी क्षण जगज्जननी का दर्शन हुआ। दर्शनान्तर वे दिव्यो-न्माद में सदैव मग्न रहने लगे और पूजा करने में असमर्थ हो गये। वे कभी कभी वाह्यज्ञान-शून्य भी रहने लगे। इसी समय इनके कुटुम्बियों ने यह समझ कर कि शायद विवाह से इनकी अवस्था बदल जाय श्री शारदामणि देवी के साथ उनका विवाह कर दिया। विवाह के समय श्री रामकृष्ण जी की अवस्था २२-२३ वर्ष की थी और श्री शारदामणि की अवस्था ६ वर्ष की थी।

विवाह के पश्चात् परमहंस दक्षिणेश्वर के काली

मन्दिर में लौट आये और उनकी अवस्था बिल्कुल नहीं बदली। काली देवी की पूजा करते २ ही आप अद्भुत ईश्वर-रूप का दर्शन करने लगते। आरती करने से तृप्ति ही नहीं होती। पूजा करने बैठते पर वह समाप्त ही नहीं होती। कभी २ तो वे ऐसे लीन हो जाते कि अपने ऊपर ही फूल चढ़ा लेते। वे फिर और पूजा नहीं कर सके और प्रेमोन्मत्त होकर इधर उधर विचरने लगे। मथुर बाबू उनको महापुरुष समझ कर उनकी सेवा करने लगे और दूसरे ब्राह्मण द्वारा काली माता की पूजा का प्रबन्ध करा दिया। श्री रामकृष्ण के भांजे श्रीयुत हृदय मुखोपाध्याय को उन्होंने श्रीरामकृष्ण की सेवा का भार दे दिया।

परमहन्स देव ने फिर पूजा भी नहीं की और सांसारिक व्यवहार भी नहीं किये। विवाह नाममात्र के लिये ही हुआ। उन्होंने अपनी पत्नी से कभी शरीर-सम्बन्ध नहीं किया। प्रत्युत उन्हें जगन्माता का रूप समझ कर उनकी पूजा की थी। वे रात दिन 'माँ! माँ!' कहा करते थे और

जगन्माता के साथ बात करते थे--कभी जड़वत् काष्ठ की पुतली की तरह और कभी बालक की भाँति। कामिनी–काञ्चनासक्त विषयी पुरुषों को देखकर आप छिप जाते थे। ईश्वर की भक्ति तथा चर्चा के अतिरिक्त और कुछ उनको अच्छा नहीं लगता था।

दक्षिणेश्वर का काली मन्दिर एकान्त तथा पवित्र स्थान है। वहां सदाव्रत दिया जाता है। गङ्गासागर और पुरी की यात्रा करने वाले बहुत से मत मतान्तर के सज्जन, पण्डित, अनुभवी महात्मा आया करते थे और परमहन्स देव से मिलते थे। तन्त्रशास्त्र में सुपण्डिता एक सिद्धा भैरवी ब्राह्मणी सन् १८६१ के लगभग आई और उसने उन्हें योग्य साधक समझ कर श्रीरामकृष्ण से ६४ प्रकार के तन्त्रोक्त एवम् और और यौगिक साधन कराये। श्रीरामकृष्ण ने सब में पूर्ण सिद्धि प्राप्त की। ब्राह्मणी ने इन्हें श्रीनित्यानन्द वेश में श्रीचैतन्य समझ कर इनको श्रीमद्भागवत श्रीचैतन्यचरितामृत

आदि वैष्णव ग्रन्थ भी सुनाये। इस ब्राह्मणी ने श्रीरामकृष्ण जी को सब से पहले अवतार घोषित किया था और उसने मथुर बाबू द्वारा वर्द्धमान राज्य के सभा-पण्डित पद्मलोचन आदि प्रसिद्ध पण्डितों को एकत्र किया और उनके सामने परमहन्स का शारीरिक और मानसिक लक्षण प्रदर्शन कर शास्त्रों के प्रमाण से उनका अवतार होना प्रतिपादन किया।

तांत्रिक इतिहास में सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात श्री रामकृष्ण ने वैष्णव साधनाओं से भी उन्हीं के भावों के अनुसार भगवद्दर्शन लाभ किया। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भावों की पृथक पृथक रीति के अनुसार तन्मय होकर सिद्धि प्राप्त की। प्रत्येक साधना के अन्त में साधनानुयायी ईश्वरीय रूप उनके सामने प्रकट होता था और उनमें लीन हो जाता था। वे वात्सल्यभाव में श्री रामचन्द्र जी की बालमूर्ति का निरन्तर दर्शन करते थे और बाल रामचन्द्र इनके साथ उसी प्रकार लीला विलास

करते थे जैसे बच्चा माता के साथ।

वे जब कोई साधना आरम्भ करते तो उसी भाव में मग्न रहते हुए ही उनकी समस्त जीवन क्रिया होती थीं। दास्य भाव से साधना करते समय महावीर हनुमान जी की तरह फल मूल खाते थे और वृक्ष-शाखा पर बैठे रहते थे। मधुर भाव की साधना में श्रीमती राधारानी के सखी भाव में आविष्ट होकर उसी तरह वेष-भूषा का व्यवहार रखते थे। श्री कृष्ण-विरह के अन्तस्ताप से उनको इतना सन्ताप होता था कि सारे दिन सिर पर भीगा अंगौछा रख कर आकण्ठ गङ्गाजल में निमग्न रहते थे और शाम को मथुर बाबू की कोठी में सङ्गमरमर के फ़र्श को धुलवा कर शान्ति पाने के लिये वहीं लेट जाते। उन्होंने देखा कि कोई भी साधना यदि दृढ़ निष्ठा से की जाय तो उसी से भगवत प्राप्ति होती है। परमहन्स जब कोई साधना आरम्भ करते थे तब उसी भाव के गुरु भी उनके पास आ जाया करते थे।

एक दिन सन् १८६५ में वेदान्तिक सन्यासी ब्रह्म निष्ठ तोतापुरी यदृच्छा से काली मन्दिर में पधारे। परमहन्स को देखकर और वेदान्त साधन का अधिकारी समझ कर तोतापुरी ने इन्हें सन्यास दीक्षा दी। दीक्षामात्र से परमहन्स को निर्विकल्प समाधि लग गई और वे तीन दिन तक उसी समाधि में मग्न रहे। तीन दिन के बाद तोतापुरी ने अपने शिष्य को समाधि से व्युत्थित किया और कहा कि "जो दशा मुझे ४० वर्षों के साधन से प्राप्त हुई इन्हें तीन दिन के परिश्रम से मिल गई।" तोतापुरी तीन दिन से अधिक कहीं पर नहीं ठहरते थे, परन्तु परमहन्स देव के प्रभाव से उनका यह नियम टूट गया। ११ मास परमहन्स देव के सङ्ग निवास करके वे चले गये।

तब परमहन्स देव के मन में निरन्तर निर्विकल्प समाधि में रहने की इच्छा हुई। वे ६ महीने इसी अवस्था में रहे तब जगन्माता ने कहा था "तू और मैं एक, तू भक्ति के लिये रह। जीवों के मङ्गल के

लिये अनेक शुद्ध कामनाशून्य भक्त आयेंगे।" तब श्री रामकृष्ण रात-दिन समाधिस्थ और भाव-मग्न रहा करते थे।

सन् १८६८ में मथुर बाबू परमहन्स देव को साथ लेकर तीर्थयात्रा के लिये बाहर गये। वैद्यनाथ भगवान के दर्शन करके काशीधाम और प्रयाग भी गये थे। द्वितीय बार वे ७-८ वर्ष बाद गये थे। इस यात्रा में काशीधाम, प्रयाग और वृन्दाबन के दर्शन किये। काशी में मणिकर्णिका पर समाधिस्थ होकर विश्वनाथ के गम्भीर चिन्मय रूप के दर्शन किये थे और उन्हें मुमुक्षुओं के कान में तारक ब्रह्म का नाम सुनाते देखा। वहीं मौन व्रतधारी तैलङ्ग स्वामी से मिले। मथुरा में ध्रुव घाट पर श्री रामकृष्ण ने अपनी आँखों से वसुदेव की गोदी में श्री कृष्ण के दर्शन किये थे। सन्ध्या समय श्री कृष्ण यमुना पार से गौवों को गोशाला की ओर लौटाये ला रहे हैं इत्यादि लीलाभाव के भी अपनी आंखों से दर्शन किये थे। निधुबन में राधा-प्रेम में मग्न सिद्ध

वैष्णवी गङ्गामाता के साथ मिले थे। गङ्गामाता श्री रामकृष्ण में श्रीमती राधारानी का महाभाव देख कर उनको दुलारी कहती थीं और उनको अपने पास रखना चाहती थीं।

परमहन्स श्री रामकृष्ण ने वैष्णव, शक्ति, शैव इत्यादि भावों की साधना समाप्त करके अल्लाह मन्त्र का साधन करके सिद्धि का लाभ किया और ईसा मसीह का भी चिन्तन करके दर्शन किया था। इस प्रकार परमहन्स देव ने सर्व-धर्म-समन्वय प्रतिपादन किया। ये कहा करते थे कि भगवान के अनेक नाम और अनन्त रूप हैं। चाहे जिस नाम, व रूप का सरल हृदय में स्मरण करो, उसी के द्वारा परमेश्वर का दर्शन हो सकता है। उनके उपदेशों में कामिनी-काञ्चन त्याग का उपदेश प्रधान है। स्वयम् भी उनका जीवन इस उपदेश का ज्वलन्त दृष्टान्त था। सभी स्त्रियों को, वेश्या तक को वे जगन्माता का रूप समझते थे और काञ्चन से इतना उत्कट वैराग्य था कि निद्रावस्था में भी यदि कोई इनके शरीर

से रूपये पैसे का स्पर्श कराता तो उनका वह अङ्ग ऐंठने लगता था।

सन् १८७५ ई० में ब्राह्म समाज के तृतीय प्रधान नेता श्रीयुत केशवचन्द्र सेन जब बेलघर के बाग़ में भक्तों के साथ ध्यान चिन्ता किया करते थे तब परमहन्स देव उनसे मिलने गए थे।

केशव की भगवद्भक्ति देख कर परमहन्स बहुत प्रसन्न हुए थे और केशव के मन में भी उन पर गम्भीर प्रेम और भक्ति का सञ्चार हुआ था। केशव कभी भक्तों के साथ और कभी अकेले श्री रामकृष्ण के पास जाया करते थे। श्री रामकृष्ण भी केशव सेन के ब्राह्म मन्दिर को और साधारण समाज को उपासना काल में देखने जाते थे। ये केशव के घर में और अन्यान्य ब्राह्म भक्तों के उपासना उत्सव में जाया करते थे। इस समय से केशवचन्द्र परमहन्स की महिमा समाचार पत्रों-पत्रिकाओं में लिखने लगे। तब से देश विदेश में इनके नाम को लोग जानने लगे और उनके दर्शन करने के लिये एवम् उनसे

उपदेश लेने के. लिये जनता आने लगी। अनेकों प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित तथा अन्यान्य विख्यात पुरुषों ने इनके दर्शन किये थे।

इस दशा में परमहन्स देव की उन्माद अवस्था प्राय: चली गई थी और वे शान्त सदानन्द बालक की अवस्था में थे। कभी समाधि में लीन रहते, कभी भावराज्य में विचरण किया करते और कभी पाँच वर्ष के बालक के समान प्रतीत होते थे। व्युत्थान दशा में समागत भक्तों के साथ भगवत् चर्चा करते उपदेश देते तथा भावोन्मत्त होकर कीर्तन, भजन और नृत्य किया करते थे। वे सब को नारायण दृष्टि से देखते और उसी प्रकार व्यवहार करते थे। उन्होंने स्वयम् उपदेश दिया कि "जीव पर दया क्या? शिव समझकर उसकी सेवा करनी चाहिये, एवम सभी के साथ नारायण दृष्टि से व्यवहार करना चाहिये"।

सन् १८७९–८० ई० में परमहन्स के अनेक अन्तरङ्ग भक्त इनके पास आने जाने लगे। स्वामी विवेकानन्द [नरेन्द्रनाथ] पहिली बार सन् १८८१

ई० में एक मित्र के साथ इनके पास गये और पूछा " महाशय, क्या आपने परमेश्वर को देखा है ?" उसपर श्री रामकृष्ण ने दृढ़ता से कहा "हाँ देखा है।" इस आशातीत उत्तर को सुनकर नरेन्द्र ने पूछा कि " क्या आप मुझे भी ईश्वर का दर्शन करा सकते हैं ? " श्री रामकृष्ण ने कहा " हाँ, करा सकता हूँ "। अगली बार जब नरेन्द्र परमहन्स देव के पास पहुँचे तो उन्होंने नरेन्द्र का हृदय स्पर्श करके उसकी निर्विकल्प समाधि लगा दी।

परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द जी ने श्री रामकृष्ण जी की धर्म-समन्वय वाणी तथा सनातन वेदान्त धर्म का सार्वभौमिक स्वरूप अमेरिका, यूरोप और भारत वर्ष में प्रचार करके सनातन धर्म और भारत भूमि के प्रति भारतवासी तथा विदेशियों की श्रद्धा आकर्षित की है। सनातन धर्म का अनुशीलन और प्रचार तथा जाति वर्ण का भेद न मानकर नारायण भाव से सब मनुष्यों की हर तरह सेवा के लिये श्री रामकृष्ण मठ और श्री रामकृष्ण मिशन नामक सन्स्थायें स्थापित कीं।

उनके गृहस्थ शिष्यों में रामचन्द्र दत्त, बलराम वसु, गिरीशचन्द्र घोष, दुर्गा चरण नाग, महेन्द्रनाथ गुप्त, पूर्ण चन्द्र घोष इत्यादि अनेक बहुत ऊँचे दर्जे के सच्चे भक्त हुए हैं। अनेक स्त्रियाँ परमहन्स श्रीरामकृष्ण की भक्ता थीं। सन्यासियों में विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, योगानन्द, निरञ्जनानन्द, प्रेमानन्द, रामकृष्णानन्द, तुरीयानन्द, अद्भुतानन्द, शारदानन्द, शिवानन्द आदि आचार्य कोटि के महात्मा हुए हैं।

सन् १८८६ में परमहन्स की महा समाधि हुई। अपने जीवन के अन्तिम पाँच छः वर्षों में उनके पास धर्मोपदेश लेने के लिये विभिन्न सम्प्रदायों के उच्च नीच, धनी, निर्धन, स्त्री, पुरुष, युवा, वृद्ध दिन-रात आया करते थे। परमहन्स अविराम अविश्रान्त उपदेश देते रहते थे। उनमें इतनी आध्यात्मिक शक्ति थी कि वे किसी को स्पर्श द्वारा, किसी को दृष्टि द्वारा, किसी को उपदेश द्वारा, किसी को केवल इच्छा ही से प्राकृत सन्स्कारों को हटाकर ईश्वर-ज्ञान दिया करते थे। उन्होंने शास्त्रादि नहीं पढ़ा था। परन्तु

अपने अनुभव से जो कुछ उपदेश देते थे वे शास्त्र के साथ मिलते थे। इसलिये उनका जीवन शास्त्र का भी प्रमाण स्वरूप है। उनकी अलौकिक शक्ति, अपूर्व पवित्रता, महत् ज्ञान अमानुषिक त्याग और असीम प्रेम को देखकर भक्तों की धारणा हो गई थी कि वे अवतार हैं। उन्होंने भी अन्तरङ्ग भक्तों से कहा था "जो राम, जो कृष्ण, वही अब रामकृष्ण।"

आत्म-ज्ञान

—:o:—

१. मनुष्य अपने आप को पहचानने से भगवान को पहचान सकता है। 'मैं कौन हूँ?' भली भाँति विचार करने पर मालूम पड़ता है कि 'मैं' के नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। हाथ, पैर, खून, माँस इत्यादि—इनमें से 'मैं' कौन है? जिस प्रकार प्याज का छिलका अलग करते करते छिलका ही निकलता जाता है, कुछ बाक़ी बचता ही नहीं, उसी तरह विचार करने पर "अपनत्व" के नाम से कुछ बचता नहीं। अन्त में जो कुछ रहता है वही आत्मा या चैतन्य है। अहम् भाव दूर हो जाने पर भगवान् के दर्शन होते हैं।

२. 'मैं' दो तरह का होता है। एक है पक्का 'मैं' और दूसरा कच्चा 'मैं'। मेरा मकान, मेरा घर, मेरा लड़का-यह सब कच्चा 'मैं' है। और पक्का 'मैं'

है—मैं उनका दास, मैं उनकी सन्तान और मैं वही नित्य मुक्त-ज्ञान स्वरूप हूँ।

३. एक आदमी ने कहा, मुझको ऐसा उपदेश दीजिये कि एक ही बात से मुझ में ज्ञान आजाय। उत्तर मिला 'ब्रह्म ही सत्य है और जगत् मिथ्या है' इस बात को धारण करो।

४. शरीर के रहते हुये 'मेरा' अथवा 'मैं-पन' बिल्कुल नहीं मिट सकता है। कुछ न कुछ अवश्य रह जाता है; जैसे नारियल के पेड़ की शाखायें अलग हो जाने पर भी निशान तो बने ही रहते हैं। परन्तु यह नाम मात्र का 'अपनत्व' मुक्त पुरुप को बाँध नहीं सकता है।

५. दिगम्बर तोतापुरी स्वामी से परमहन्स जी ने पूछा, 'अवस्था पाकर रोज़ रोज़ आपको ध्यान करने की क्या आवश्यकता है?' तोतापुरी जी ने जवाब दिया, 'लोटे को यदि रोज़ माँजा न जाय तो मैला पड़ जाता है; नित्य ध्यान न करने से चित्त में अशुद्धि

आ जाती है।' परमहन्स जी ने कहा, 'अगर सोने का लोटा हो तो काला न होगा। अर्थात् सच्चिदानन्द लाभ होने पर साधना की आवश्यकता नहीं रह जाती है'।

६. 'मैं' का बोध रहने से, 'तुम' का भी बोध रहेगा। जैसे जिसको उजाले का ज्ञान है उसको अन्धेरे का ज्ञान भी अवश्य रहेगा; जिसको अच्छे का ज्ञान है, उसको बुरे का भी ज्ञान है; जिसको पुण्य का ज्ञान है, उसको पाप का भी ज्ञान जरूर होगा।

७. जैसे जूते पहन कर निशङ्क काँटों के ऊपर से चला जा सकता है, उसी तरह 'तत्वज्ञान' का आवरण पहन कर मन इस काँटेदार सन्सार में विचरण कर सकता है।

८. एक साधु हमेशा ज्ञानोन्माद अवस्था में रहते थे; किसी से बोलते न थे; और लोग भी उन्हें पागल समजते थे। एक दिन शहर से भिक्षा लाकर

एक कुत्ते के ऊपर बैठ कर वही मिष्टान्न खाने लगे और कुत्ते को भी खिलाने लगे। यह देख कर बहुत से लोग वहाँ इकट्ठा हो गये और कुछ लोग तो उनको पागल कह कर हँसी उड़ाने लगे। यह देख कर साधु ने लोगों से पूछा, 'तुम लोग क्यों हँसते हो?'

विष्णु परिस्थितो विष्णुः ; विष्णुः खादति विष्णवे ।
कथम् हससि रे विष्णो ; सर्वं विष्णुमयम् जगत् ॥

६. जब तक वहाँ वहाँ (अर्थात दूर या बाहर) है तब तक अज्ञान है, और जब यहाँ यहाँ है (अन्तर की ओर नजर है) तभी ज्ञान है। जिसके लिये 'यहाँ' (अर्थात अन्तर भाव) है, उसके लिये 'वहाँ' भी है (अर्थात भगवत् चरणों में स्थान है)।

ईश्वर

—:o:—

१. भगवान् सबके भीतर किस प्रकार विराजते हैं? जैसे चिक की आड़ से बड़े घराने की औरतें; वे सब को देखती हैं पर उनको कोई देख नहीं पाता। भगवान् भी ऐसे ही सब में मौजूद है।

२. प्रदीप या दिये का काम है प्रकाश देना; कोई तो उसकी सहायता से रसोई बनाता है; कोई जाली कार्रवाई करता है; और कोई रामायण या अन्य सद्ग्रन्थ पढ़ता है। यह सब क्या प्रकाश के गुण या दोष कहे जा सकते हैं। अर्थात कोई तो भगवान् के नाम लेकर मुक्ति के लिए कोशिश करता है; और कोई वही नाम लेकर चोरी करता है अथवा पाखण्ड-रचता है, यह सब क्या भगवान् के दोष कहे जा सकते हैं।

३. जिसकी जैसी भावना उसकी वैसी प्राप्ति ; भगवान् कल्प-वृक्ष के समान हैं। उनसे जो कुछ प्रार्थना की जाती है वही प्राप्त होता है। ग़रीब का लड़का हाई कोर्ट का जज बनकर समझता है मैं बड़ी अच्छी तरह से हूँ। भगवान् भी तब कहते हैं तुम अच्छी तरह से ही रहो। फिर जब पेन्शन लेकर घर में बैठता है तब सोचता है इस जीवन में मैं ने क्या किया ? भगवान् भी तब कहते हैं, 'हां ऐसा ही है ; तुमने किया क्या ?'

४. ब्रह्म और शक्ति अभेद है ; ब्रह्म जब सर्व कर्म रहित अवस्था में रहते हैं तब उनको ब्रह्म या शुद्ध ब्रह्म कहा जाता है। और जब सृष्टि स्थिति और प्रलय इत्यादि करते हैं तब उनकी शक्ति का कार्य कहलाता है।

५. साकार और निराकार यह दोनों किस प्रकार हैं ? जैसे जल और बरफ़। जब जल जम जाता है तब बरफ़ कहलाता है और साकार हो जाता है;

और जब गल कर जल हो जाता है तभी निराकार कहलाता है।

६. परमहन्स जी एक दिन त्रैलङ्ग स्वामी जी के दर्शन को गये। परमहन्स देव जी ने पूछा 'ईश्वर तो एक है; फिर लोग उन्हें बहुत करके क्यों बतलाते हैं?' त्रैलङ्ग स्वामी जी ने मौन व्रत होने के कारण इशारे से समझाया कि भगवान् का ध्यान करने से पता चलता है कि वे एक ही हैं और विचार करते ही 'बहुत-पन' की बुद्धि आके घेर लेती है।

७. जो साकार हुए वे ही निराकार भी हैं। भक्त के निकट वे साकार रूप से प्रकट होकर दर्शन देते हैं। जैसे महा समुद्र है तो केवल अनन्त जल-राशि,—हाँ कहीं कहीं पर अति ठण्ढक पड़ने के कारण उसका जल जम कर बरफ़ के रूप में दिखाई पड़ता है। उसी प्रकार भक्त के भक्ति रूपी ठण्ढक से भगवान के साकार रूप का दर्शन-लाभ होता है। एवम् सूर्य निकलने पर जैसे बरफ़ गल जाता है और

पहले की तरह जल हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य के उदय होने पर वही साकार रूप बरफ़ गल कर जल हो जाता है अर्थात् सब कुछ निराकार में बदल जाता है।

माया

—:o:—

१. माया की प्रकृति कैसी है? जैसे पानी के ऊपर की काई। हटाने पर सब काई हट जाती है। फिर थोड़ी देर बाद ही काई अपने आप ही फैल जाती है। उसी प्रकार जब तक विचार कीजिये अथवा जब तक साधु सत्सङ्ग कीजिये, कोई विकार नहीं रहता। थोड़ी देर बाद ही विषय वासना चित्त को ढक लेती है।

२. सांप के मुँह में विष है; वह जब स्वयम् खाता है तब विष उस पर प्रभाव नहीं डालता। परन्तु जब दूसरे को काटता है तब विष उस पर प्रभाव कर जाता है। उसी प्रकार भगवान् में माया तो सही है, पर उनको मुग्ध नहीं कर सकती है, लेकिन दूसरों को बशीभूत कर लेती है।

३. माया किसे कहते हैं? बाप, माँ, भाई, स्त्री, पुत्र, भाँजा, भतीजा–इन सब से जो मोह है वही माया है। और दया का अर्थ है–सर्व भूत में हमारे हरि विराजमान हैं यह समझ कर सबसे बराबर प्रेम करना।

४. जिसको भूत आ जाता है वह यदि जान जाता है तो भूत भाग जाता है। माया मुग्ध जीव यदि एक बार ठीक से जान ले कि वह माया द्वारा ग्रसित है तो माया उसे शीघ्र ही छोड़ जाती है।

५. जीवात्मा और परमात्मा के बीच में एक माया का परदा है। यह परदा न हटने से आपस में भेंट नहीं हो सकती। जैसे आगे राम जी बीच में जानकी जी और पीछे लक्ष्मण जी। यहाँ पर राम को परमात्मा मान लो और लक्ष्मण को जीवात्मा। बीच में जानकी जी माया रूपी परदा हैं। जब तक जानकी जी बीच में हैं तब तक लक्ष्मण जी रामचन्द्र जी को नहीं देख सकते हैं। यदि जानकी जी थोड़ा

हट जावें तो लक्ष्मण जी को राम जी के दर्शन हो जावें।

६. माया दो प्रकार की होती है—एक विद्या दूसरे अविद्या। और विद्या रूपी माया भी दो प्रकार की होती है, १—विवेक २—वैराग्य। इसी विद्या रूपी माया का अवलम्बन कर जीव भगवान की शरण आता है। अविद्या रूपी माया छः प्रकार की होती है—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। अविद्या रूपी माया 'मैं' और 'मेरा' के ज्ञान द्वारा मनुष्यों को बाँध रखती है। मगर विद्या रूपी माया के प्रकाश से जीव की अविद्या एक दम नष्ट हो जाती है।

७. जैसे जब तक पानी गन्दा रहता है तब तक चन्द्र या सूर्य की परछाईं उसमें ठीक ठीक दिखलाई नहीं पड़ती; उसी प्रकार माया अर्थात् 'मैं' और 'मेरा' यह भाव जब तक न दूर हो जाय तब तक आत्मा साक्षात ठीक नहीं हो सकता।

८. जैसे सूर्य पृथ्वी को प्रकाशित बनाये रखता है, परन्तु बादल के छोटे छोटे से टुकड़े के सामने आते ही दिखलाई नहीं देता है, उसी प्रकार सर्व-व्यापी और प्रकाश स्वरूप सच्चिदानन्द को हम मामूली माया के परदे के कारण देख नहीं सकते।

९. तालाब की काई हटाने पर भी अपने आप फैल जाती है, उसी तरह माया को एक बार हटाने पर भी फिर से आघेरती है। पर यदि काई को हटा कर बाँस का बेड़ा बाँध दिया जावे तो काई बाँस को पार करके दुबारा नहीं आसकती। उसी प्रकार माया को हटाकर सद्ज्ञान और भक्ति का बेड़ा लगाये रखने से माया अपने अन्दर नहीं घुस सकती है। ऐसी अवस्था में शुद्ध सच्चिदानन्द का ही तेज अन्तरात्मा को प्रकाशित करता रहता है।

अवतार

—:०:—

१. जब बड़े बड़े शहतीर पानी के ऊपर एक साथ उतराते हैं तो उनके ऊपर चढ़ कर कितने ही मनुष्य नदी को पार कर सकते हैं; उनके बोझ से वे डूबते नहीं हैं। पर छोटी सी एक लकड़ी के टुकड़े पर यदि कौआ भी बैठ जाय तो वह डूब जाती है। उसी प्रकार जब भगवान के अवतारों का आविर्भाव होता है तो कितने ही हज़ारों लाखों मनुष्य उनके आश्रय से तर जाते हैं। परन्तु सिद्ध पुरुष अपनी चेष्टा से बहुत ही कष्ट पाकर पार कर सकता है।

२. रेल का इञ्जिन स्वयम् भी आगे बढ़ता है और कितनी ही माल गाड़ियों को अपने साथ खींच ले जाता है। अवतार भी उसी प्रकार हज़ारों लाखों मनुष्यों को ईश्वर के निकट पहुँचा देता है।

जीव के अवस्था भेद

—:—०—:—

१. मनुष्य मानों तकिये के ग़िलाफ़ हैं। ऊपर से देखने पर कोई तो लाल है, कोई तो काला है, मगर सबके भीतर रुई ही है। मनुष्य देखने में कोई सुन्दर है, कोई काला है, कोई महात्मा है, तो कोई दुराचारी है; मगर सबके भीतर वही परमात्मा विराजमान है।

२ सन्सार में दो प्रकार के मनुष्यों के स्वभाव पाये जाते हैं। कुछ तो सूप की तरह स्वभाव रखते हैं और कुछ चलनी की तरह होते हैं। सूप जैसे भूसी इत्यादि असार वस्तुओं का त्याग करके सार-युक्त वस्तुओं को ग्रहण करता है, जैसे अनाज इत्यादि। उसी प्रकार कुछ लोग सन्सार की असार वस्तुओं (कामिनी, काञ्चन आदि) को छोड़ कर सार-युक्त

बात अर्थात भगवान् को ग्रहण करते हैं। और चलनी जैसे सार-युक्त वस्तुओं को निकाल कर असार वस्तुओं को अपने अन्दर रखती है इसी प्रकार सन्सार के कुछ पुरुष सार-युक्त वस्तु, ईश्वर को त्याग करके कामिनी, कञ्चनादि को ग्रहण करते हैं।

३ विषयी पुरुषों का मन गोबर के कीड़े की भाँति होता है। यह कीड़ा गोबर में ही रहना अधिक पसन्द करता है। यदि गोबर छोड़ कर उसे कुछ भी दिया जावे तो उसको पसन्द नहीं आता है। यदि बलात्कार उसे कुछ दिया भी जावे तो उसे पसन्द नहीं आता है। यदि वह गोबर के स्थान में पद्म में रख दिया जावे तो छटपटाया करता है। विषयी पुरुषों का मन उसी प्रकार विषय वासना की बातों के सिवाय अन्य किसी प्रकार की बातों में नहीं लगता है। यदि ईश्वरीय कथा उसे बतलाई जावे तो वह उस स्थान को त्याग करके जहाँ विषय की बातें होती हैं वहाँ चला जाता है।

४. जाल में पड़ने पर भी कुछ मछलियाँ भागने की कुछ भी चेष्टा नहीं करतीं पर चुप चाप पड़ी रहती हैं और कुछ इधर उधर छटपटाती रहती हैं, मगर भाग नहीं पाती हैं। एक तीसरे प्रकार की मछली होती है जो जाल को काट कर भाग जाती है। इसी प्रकार सांसारिक जीव भी तीन प्रकार के होते हैं; यथा—बद्धजीव, मुमुक्षु जीव और मुक्त जीव।

५. कबूतर के बच्चे का गला ऊपर से टटोलने पर जैसे मटर के दाने साफ मालूम पड़ते हैं, उसी तरह विषयी पुरुष से बात चीत करते ही विषय वासनायें स्पष्ट हो जाती हैं। विषय की बातें तो उनको भली मालूम होती हैं किन्तु धर्म की बातें अच्छी नहीं लगतीं।

६. यदि किसी ने मूली खाई हो तो उसकी डकार से पता चल जाता है; उसी प्रकार धार्मिक पुरुष से भेंट होने पर धर्म विषय की ही बातें हुआ करती हैं। और जो विषयी लोग हैं वे केवल विषय की ही बातें किया करते हैं।

७. दो प्रकार की मक्खियाँ होती हैं। एक तो शहद की मक्खियाँ जो शहद के अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाती हैं। दूसरे जो साधारण मक्खियां होती हैं वे शहद पर भी बैठती हैं और यदि सड़ता हुआ घाव दिखलाई पड़े तो तुरन्त शहद को छोड़ कर उसी पर जा बैठती हैं। इसी प्रकार दो तरह के स्वभाव के लोग होते हैं; एक जो ईश्वर में अनुराग करते हैं वे ईश्वर की चर्चा के सिवाय कोई दूसरी बात करते ही नहीं और दूसरे जो सन्सार में आसक्त जीव हैं वे ईश्वर की बात सुनते सुनते यदि किसी स्थान पर विषय की बातें होती हों तो तुरन्त भगवान की चर्चा को छोड़ कर उसी में सन्लग्न हो जाते हैं।

८. सन्सारी जीव स्वयम् तो हरि नाम सुनते ही नहीं हैं, बल्कि दूसरों को भी नहीं सुनने देते हैं; धर्म और धार्मिक पुरुषों की निन्दा किया करते हैं। कोई यदि ईश्वरीय ध्यान में मग्न हो तो उसका हास्य करते हैं।

९. यदि मगर के ऊपर किसी शस्त्र द्वारा हमला किया जावे तो उसे घायल न करके शस्त्र छिटक कर अलग जा गिरता है। उसी प्रकार सन्सारी जीव में धर्म चर्चा कितनी ही क्यों न की जाय उनके हृदय पर तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता।

१०. सूर्य की किरणें सर्वत्र समान होने पर भी दर्पण और स्वच्छ पदार्थों पर विशेष भाव मे प्रकाशित होती हैं। भगवान का विकाश प्रत्येक जीव में समान होने पर भी महात्माओं के हृदयों में विशेष रूप मे पड़ता है।

११. सभी प्रकार का पानी नारायण का रूप है। परन्तु हर स्थान का जल पीने के योग्य नहीं होता है। सब कहीं परमात्मा है पर हर स्थान पर जाना असम्भव है। जैसे किसी जल में पैर धोये जाते हैं, कोई पिया जाता है और कोई जल स्पर्श तक नहीं किया जाता है। इसी प्रकार किसी स्थान पर जाना चाहिये और किसी स्थान को दूर ही से प्रणाम करके भागना चाहिये।

१२. शेर के अन्दर भी परमात्मा विराजमान है, मगर उसके सामने नहीं जाना चाहिये। दुष्ट मनुष्यों में भी ईश्वर मौजूद है मगर इसी लिये उनका साथ करना उचित नहीं है।

१३. गुरु जी ने एक शिष्य को उपदेश दिया कि सभी जीवों में जगदीश्वर का बास है। शिष्य ने भी ऐसा ही समझ लिया। एक दिन रास्ते में एक हाथी आ रहा था उसके महावत ने कहा "हट जाओ"। शिष्य ने सोचा, "मैं क्यों हटूँ ?" मैं भी नारायण, हाथी भी नारायण, डर किस बात का है। यह समझ कर वह वहाँ से न हटा। अन्त में हाथी ने उसे सूँड से उठाकर दूर फेंक दिया। इससे उसको बड़ी चोट आई। इसके पश्चात उसने गुरु जी से वृतान्त कह सुनाया। गुरु जी ने कहा,— "भली कही ! तुम नारायण हो और हाथी भी नारायण है ; मगर ऊपर से महावत रूपी नारायण की बात क्यों नहीं सुनी ?"

१४. साधु पुरुषों का क्रोध कैसा है, जानते

हो? जैसे पानी पर की लकीर। जैसे पानी पर लकीर खींचने पर शीघ्र मिट जाती है, उसी प्रकार सन्त जनों को क्रोध आते ही ठण्ढा पड़ जाता है।

१५. जैसे कसौटी पर सोना या पीतल को घिसते ही उनके भेद का पता चल जाता है, उसी प्रकार भगवान के निकट सरलता या कपट का पता शीघ्र ही चल जाता है।

१६. बद्ध सांसारिक जीवों को किसी भी प्रयत्न से होश नहीं होता है। सन्सार के विविध दुःख, कष्ट और विपत्ति में पड़े रहने पर भी उनको चैतन्य नहीं होता है। जैसे ऊँट काँटे दार घास को खाना पसन्द करता है और खाते खाते मुँह से खून की धारा बहती रहती है तिस पर भी काँटे दार घास खाना नहीं छोड़ता है। उसी तरह सांसारिक पुरुष अधिक से अधिक शोक ताप सहन करने पर भी विषय वासना के लालच को नहीं छोड़ता।

——:o:——

गुरु

—:—o—:—

१. गुरू एक ही होता है ; परन्तु उपगुरू बहुत से हो सकते हैं। जिनसे कुछ भी शिक्षा प्राप्त हो उन्हीं को उपगुरू कहा जा सकता है । श्रीमद्भागवत में लिखा है कि अवधूत मुनि ने इस प्रकार २४ उपगुरू किये थे।

२. एक दिन मैदान पर चलते चलते अवधूत ने देखा कि सामने बड़ी शान के साथ बाजा गाजा बजाते हुये एक दूल्हा आ रहा है और एक तरफ़ एक व्याध एकाग्र चित्त होकर अपने लक्ष्य की ओर निशाना बाँधे बैठा है और बारात के सङ्ग जो गाना बजाना हो रहा था उसकी तरफ़ उसने एक बार भी नहीं देखा। अवधूत ने उस व्याध को नमस्कार करके कहा कि आप हमारे गुरू हैं। मैं भगवान का ध्यान

करने जब कभी बैठूँ तब उनकी ओर मेरा एकाग्र चित्त रहे ।

३. एक मनुष्य मछली पकड़ रहा था । अवधूत ने उसके पास जाकर पूछा–" भाई, अमुक स्थान को जाने का कौन सा रास्ता है ?" वह उस समय मछली पकड़ने में मस्त था । जब एक मछली काँटे में आ-फँसी तभी उसने मुड़ करके कहा " आप क्या कहते हैं " । अवधूत जी ने प्रणाम करके कहा, " आप हमारे गुरू हैं, हम जब आपकी तरह इष्ट देव के ध्यान में बैठें, तब इसी प्रकार अभिलाषा पूरी होने के पहले दूसरी ओर मेरा मन न जावे । "

४. एक चील को चोंच में एक मछली दबाये हुये आते देख कर सैकड़ों कौवे और चीलें उसके पीछे हो लिये और उसे ठुकरा ठुकरा कर मछली छीनने का प्रयत्न करने लगे । अन्त में विवश होकर उसने मछली को फेंक दिया । एक दूसरी चील ने ज्योंहीं उसको उठाया, त्योंहीं कौओं और चीलों के झुण्ड ने पहली चील को छोड़ कर उस दूसरी चील

का पीछा किया। पहली चील निश्चिन्त होकर एक पेड़ की डाली पर चुप चाप बैठ गई। अवधूत जी ने इस निरापद अवस्था को देख कर प्रणाम किया और बोले इस सन्सार के झञ्झटों को दूर करने से ही शान्ति मिल सकती है; नहीं तो बड़ी विपत्तियों का सामना करना पड़ता है।"

५. अवधूत जी ने शहद की मक्खी को भी गुरू करके माना है। शहद की मक्खी बहुत दिन तक लगातार कष्ट उठाकर शहद इकट्ठा करने लगी। कहीं से एक मनुष्य आया और उसके छत्ते को तोड़ कर उसका शहद चाट गया। बहुत दिनो का इकट्ठा किया हुआ शहद वह मक्खी स्वयम् अपने कार्य मं न ला सकी। अवधूत जी ने मक्खी को नमस्कार करके कहा, "हे मधुकर! आप हमारे गुरू हैं; सञ्चय करने का क्या परिणाम होता है, इसकी शिक्षा आप से ही मुझे मिली है।"

६. यदि किसी के हृदय में ठीक ठीक अनुराग पैदा हो और साधक भजन की आवश्यकता समझने लगे, तो निश्चय ही भगवान् सद्गुर से साधक को मिला देते हैं। साधक के लिये सद्गुर की चिन्ता की आवश्यकता नहीं है।

७. वैद्य तीन प्रकार के होते हैं—उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य केवल नाड़ी देखकर "यह लो दवाई खा लेना" कह कर चले जाते हैं ऐसे वैद्य अधम श्रेणी के होते हैं। जो वैद्य बड़ी मीठी बातों द्वारा उसे समझाता है कि औषधि सेवन से भला ही होगा, ऐसे वैद्य मध्यम श्रेणी के होते हैं। और जो वैद्य रोगी को किसी प्रकार से भी औषधि सेवन करता नहीं देख कर, उसके सीने पर सवार होकर मुँह फाड़ कर दवाई खिलाता है, ऐसा वैद्य उत्तम श्रेणी का होता है। इसी प्रकार जो गुरू या आचार्य धर्म शिक्षा देकर शिष्य की कोई भी खबर नहीं रखते हैं, वे गुरू अधम हैं। जो शिष्य के मङ्गल के निमित्त बारम्बार प्यार से समझाते रहते हैं, जिससे शिष्य उनके उपदेश धारण करे ऐसे गुरू मध्यम प्रकार के होते हैं। और जो गुरू यह देख कर कि शिष्य ठीक २ उनके उपदेशों का पालन नहीं करता है उसके ऊपर ज़बरदस्ती तक करते हैं, उनकी गणना उत्तम गुरुओं में होती है।

—o—o—

धर्म अनुभव की वस्तु है

(पाठ व विचार की नहीं)

---

१. शास्त्र विचार कब तक आवश्यक है, जानते हो ? जब तक सच्चिदानन्द भगवान् से साक्षात न हो । जैसे भौंरा जब तक फूल पर नहीं बैठता तभी तक गुञ्जार किया करता है ; और जब फूल के ऊपर बैठ कर मधु पान करता रहता है तब तक एक दम चुप होकर रहता है और किसी प्रकार का शब्द नहीं करता है ।

२. स्वर्गीय महात्मा केशवचन्द्र सेन ने परमहन्स देव जी से पूँछा, " बहुत से पण्डित लोग नाना शास्त्रों का पाठ करते हैं, पर उनको ज्ञान लाभ क्यों नहीं होता है ? " । परमहन्स जी ने उत्तर दिया, " जैसे चील गिद्ध बहुत ऊँचे पर उड़ते तो हैं, मगर

उनकी दृष्टि पृथ्वी पर ही रहती है, उसी प्रकार अनेक शास्त्रों का पाठ करने से ही क्या होगा ? उनका मन तो सदैव कामिनी कञ्चन में आसक्त रहने के कारण ज्ञान लाभ नहीं कर पाता है।

३. परमहन्स जी का कथन है, 'ग्रन्थ तो ग्रन्थ का काम न करके ग्रन्थि (गाँठ) का ही काम करते हैं।' विवेक और वैराग्य के साथ बिना ग्रन्थादि का पाठ करने से अहङ्कार की ही गाँठ हृदय में बढ़ा करती है।

४. जैसे ख़ाली गडुए में पानी भरते समय भक भक शब्द होता है, मगर भर जाने पर किसी प्रकार का शब्द नहीं होता है। उसी प्रकार जिसको भगवान् प्राप्त नहीं हुए हैं वे ही भगवान् के सम्बन्ध में नाना प्रकार के तर्क वितर्क किया करते हैं, और जो भगवत् दर्शन लाभ कर लेते हैं स्थिर होकर अस्तित्व का सुख भोग करते हैं।

५. विवेक और वैराग्य के बिना शास्त्र पढ़ना

व्यर्थ है। विशेक वैराग्य के बिना धर्म लाभ भी नहीं होता है। सत और असत का विचार करके सद्वस्तु ग्रहण करना और देह प्रथक है और आत्मा भी प्रथक है, ऐसे विचार बुद्धि का नाम विवेक है, विषय में तृष्णा का नाम वैराग्य है।

६. पत्रों में लिखा है कि यथेष्ठ वर्षा होगी, परन्तु समूचे पन्ने को निचोड़ने पर भी एक बूंद जल भी नहीं मिल सकता। वैसे ही पोथियों में अनेक धर्म विषयक बातें लिखी हैं पर केवल पढ़ने से ही कोई लाभ नहीं हो सकता है, साधना की आवश्यकता है।

७. एक बाग़ में दो आदमी घूमने गये। उनमें जिसकी सांसारिक बुद्धि प्रबल थी वह विचार करने लगा कि उस बाग़ में कितने आम के पेड़ हैं और उनमें कितने आम लगे हैं, अथवा बाग़ का मूल्य क्या हो सकता है, इत्यादि। और दूसरे आदमी बाग़ के मालिक के साथ दोस्ती कर पेड़ के नीचे बैठ कर एक एक करके आम तोड़ता गया और खाता गया।

कहो इनमें कौन विशेष बुद्धिमान् है? आम खाओ पेट भरेगा, केवल आम गिनने में और पत्तों का हिसाब किताब करने में क्या रक्खा है? जो लोग ज्ञान का अपमान करते हैं शास्त्र, मीमांसा व तर्क युक्ति में ही फँसे रहते हैं आम गिनने वाले के समान हैं। बुद्धिमान भक्तजन भगवान् की कृपा से इस सन्सार में परम सुख प्राप्त करते और वे आम खाने वाले के समान सुखी हैं।

८. जहाँ हाट लगा हो वहाँ से दूर खड़े होकर केवल हू हा का शब्द सुनाई देता है। जब तक भीतर न प्रवेश किया जाय तब तक हू हा शब्द का स्पष्ट रूप ठीक समझ में नहीं आता। भीतर प्रवेश करने पर पता चलता है कि कोई सौदा कर रहा है और कोई पैसे देकर वस्तुयें खरीद रहा है। ऐसे ही धर्म जगत के बाहर रह कर धर्म भाव का स्पष्ट रूप कुछ भी समझ में नहीं आसकता है।

९. इस सन्सार में सब वस्तुयें जूठी हो चुकी हैं। केवल एक ब्रह्म वस्तु ही जूठी नहीं हो सकी है।

वेद पुराण इत्यादि सब मनुष्य के मुख से उच्चारण होने के कारण जूठी हो चुकी हैं। किन्तु अब तक ब्रह्म क्या वस्तु है कोई भी मुख से वर्णन नहीं कर पाया है।

१०. जैसे बालक को स्त्री रमणं नहीं समझाया जा सकता है, उसी प्रकार विषयासक्त मायायुक्त सन्सारी जीव को ब्रह्मानन्द नहीं समझाया जा सकता है।

११. ढोलक या तबले के वाद्य सर्गम रूप में उच्चारण करना सहज है; किन्तु उसे बजाना कठिन है। ऐसे ही धर्म की बातें कहना सहज है किन्तु कार्य में परिणत करना कठिन है।

१२ रामचन्द्र नाम का एक ब्रह्मचारी परमहन्स जी के दर्शन करने आया। वह बैठ गया। और कोई बात चीत न कर केवल 'शिवोऽहम शिवोऽहम्' रटने लगा। कुछ देर चुप रहने के बाद परमहन्स जी ने कहा, "केवल शिवोऽहम् करने से क्या होगा? जब उसी सच्चिदानन्द शिव जी को हृदय में ध्यान करने

से तन्मयता प्राप्त हो जाय तभी शिवोऽहम् शब्द कहना उचित है। नहीं तो केवल मुख से शिवोऽहम् कहने से क्या होगा? जब तक ऐसी अवस्था न हो जाय तब तक सेव्यसेवक भाव ही अच्छा होता है।" परमहन्स देव जी के ऐसे नाना उपदेश द्वारा ब्रह्मचारी जी को चैतन्य हो गया और वह अपनी भूल समझ सका।

सन्सार और साधन

—o—o—

१. लुकी लुकौअल (एक खेल) खेलते वक्त ढाई को छू लेने से चोर नहीं माना जाता है, वैसे ही भगवान् के पाद पद्म छू लेने से फिर सन्सार में नहीं फँस सकता है। सन्सार में जिन्होंने ईश्वर का आश्रय लिया है, उन्हें किसी विषय में फँसना नहीं पड़ता है।

२. सन्सार में रह कर जो साधना कर सकते हैं, वे ही वीर साधक के नाम से पुकारे जा सकते हैं। शक्तिवान् पुरुष जैसे सिर पर भारी बोझा लादे रहने पर भी दूसरी ओर गर्दन मोड़ कर देख सकता है, वैसे ही वीर साधक इस सन्सार के बोझे को लादे रहने पर भी भगवान् की ओर देख सकता है।

३. गाँव की औरतें सिर पर चार पाँच घड़े रख कर ले जा सकती हैं। रास्ते में अपनी जान पहचान वाले लोगों से तनिक देर खड़ी होकर बातें

भी करती जाती हैं, पर उनका ध्यान हर समय उन्हीं घड़ों की ओर रहता है, जिससे कि वह गिर न पड़ें। धार्मिक पुरुषों को भी इसी प्रकार धर्म पथ पर दृष्टि रखना उचित है जिससे कि वे रास्ता भूल न जायें।

४. कुलटा स्त्री जैसे अपने लोगों में रहते हुए भी गृहस्थी के सभी काम करती रहती है, पर उसका मन उप-पति की ओर ही लगा रहता है। वह काम धन्धा करते हुए सर्वदा सोचती है कि कब उप-पति के साथ भेंट होगी? ऐसे ही तुम भी सन्सार के सब काम धन्धों को करते हुए भी अपने मन को प्रति क्षण भगवान् की ओर रक्खो।

५. तराजू के जिधर का पल्ला भारी होता है, उधर ही झुक जाता है और जिधर का हल्का होता है उधर का ऊपर उठ जाता है। मनुष्य का मन भी तराजू की भाँति है। उसके एक ओर सन्सार है, दूसरी ओर भगवान् है। जिसके मन में सन्सार, मान इत्यादि का भार अधिक होता है उसका मन भगवान् की ओर से उठकर सन्सार की ओर झुक

जाता है। और जिसके मन में वैराग्य और विवेक अथवा भगवद्भक्ति का भार अधिक होता है उसका मन सन्सार की ओर से उठकर भगवान् की ओर झुक जाता है।

६. एक किसान सारे दिन गन्ने के खेत में पानी सींचने के बाद खेत में गया तो उसने देखा कि एक बूंद भी पानी खेत में नहीं पहुँचा है। उस खेत में कई बिल थे; उनमें से होकर तमाम पानी दूसरी ओर बह गया। इसी प्रकार जो साधक विषय वासना और सन्सार के मानापमान की ओर ध्यान देते हुये साधन करते हैं, वे सारे जीवन-मार्ग में ईश्वर की उपासना करने पर भी अन्त में यही देखते हैं कि उन वासना रूपी बिलों के द्वारा उनकी सम्पूर्ण चेष्टायें व्यर्थ हो गईं।

७. सन्सार में सुख के लोभ से बहुत से लोग धर्म कर्म किया करते हैं। परन्तु तनिक दुःख पाते ही या मरने के समय वे सब भूल जाते हैं। जैसे तोता सारे दिन राधा कृष्ण, राधा कृष्ण रटता है; परन्तु

ज्योंहीं बिल्ली आकर पकड़ती है त्योंहीं तुरन्त ही राधा कृष्ण नाम छोड़ कर कें कें करने लगता है।

८. पानी में नाव रहने से कोई हानि नहीं है, परन्तु नाव में पानी पहुँच जाय तो नाव डूब जायेगी। साधक को सन्सार में रहने से कोई हानि नहीं है, परन्तु साधक के मन में सन्सार-भाव घुसने का फल अनर्थ ही होता है।

९. साँप को पकड़ने जाओ तो तुरन्त ही काट खाएगा, परन्तु कोई मनुष्य यदि मन्त्र जानता हो तो कई साँपों को अपने गले में लपेट कर खूब तमाशा दिखला सकता है। वैसे ही वैराग्य और विवेक का मन्त्र सीख कर यदि कोई सन्सार में लिप्त भी रहे तो भी सन्सार की माया में फँस नहीं सकता है। मन ही सब कुछ जानेगा। ज्ञान अज्ञान सब मन की अवस्थायें हैं। मनुष्य मन ही में बद्ध और मन ही में मुक्त, मन ही में साधु और मन ही में असाधु और मन ही में पापी और मन ही में पुण्यवान् हो सकता है। सन्सारी जीव यदि अपने मन में सर्वदा भगवान्

का स्मरण करता रहे तो उसके लिये किसी प्रकार की साधना की आवश्यकता नहीं है।

१०. मनुष्य को ज्ञान लाभ होने पर वह किस प्रकार रहता है, जानते हो? जैसे काँच के बने हुये कमरे के बाहर और भीतर दोनों ओर उसमें बैठा हुआ पुरुष देख सकता है।

११. गीता पढ़ने से जो फल प्राप्त होता है, वही गीता को बार बार उच्चारण करने से स्पष्ट हो जाता है, यथा 'गी त गो तागो त गो त गो ...'। गीता का तात्पर्य त्यागी बनाना ही है।

साधन का अधिकारी

—o—o—

१. जैसे आम अमरूद इत्यादि समूचे फल ठाकुर जी के भोग में लगा सकते हैं; परन्तु कौवे के द्वारा ठुकराया हुआ दागी फल न तो देव पूजा में ही आ सकता है और न ब्राह्मण अपने कार्य ही में ला सकता है उसी प्रकार पवित्र हृदय बालकों को या युवा पुरुषों को ही धर्म पथ में लाने की चेष्टा करना उचित है, वरना जिस पुरुष के हृदय में एक बार भी विषय-बुद्धि प्रवेश कर गई है, उसका धर्म पथ पर चलना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

२. हम छोटे बच्चों को इतना क्यों प्यार करते हैं, जानते हो? बाल्यावस्था में उनका मन सोलहों-आना अपने बस में रहता है। फिर धीरे धीरे कई भागों में विभाजित हो जाता है। विवाह होने पर

आठ आना स्त्री के पास चला जाता है। सन्तान होने पर चार आना बच्चों की ओर बट जाता है, और चार आना माता पिता, मान सन्मान और सज धज की ओर रहता है। इसी लिये जो लोग छोटी अवस्था में ईश्वर लाभ की चेष्टा करते हैं वे सहज ही में सफलीभूत हो जाते हैं। बूढ़ों के लिये सफलता होना बड़ी ही कठिन समस्या हो जाती है।

३. जैसे तोते के गले में कण्ठी निकलने पर फिर और नहीं पढ़ाया जा सकता है। केवल जब तक वह बच्चा रहता है तभी तक जो चाहो पढ़ना सीख सकता है। उसी प्रकार बूढ़े का मन सहज में ईश्वर की ओर नहीं जाता है, पर बाल्यावस्था में थोड़ी ही चेष्टा में मन स्थिर हो सकता है।

४. एक सेर दूध में केवल एक छटाँक पानी मिला हो तो सहज ही में थोड़ी आँच में खोया बनाया जा सकता है, परन्तु एक सेर में यदि तीन पाव पानी हो तो आसानी से खोया नहीं बन सकता है, बहुत लकड़ी और आँच की आवश्यकता होती है।

इस लिये बालक के मन में विषय वासना कम होने के कारण उसका मन ईश्वर की ओर सरलता-पूर्वक ही ढल जाता है। परन्तु बूढ़ों के मन में विषय वासना खूब ठूँस ठूँस कर होने के कारण उसका मन ईश्वर की ओर नहीं जा सकता है।

५. जैसे कच्चा बाँस आसानी से झुकाया जा सकता है और पक्का बाँस झुकाये जाने पर टूट जाता है वैसे ही बच्चों का मन आसानी से ईश्वर की ओर झुकाया जा सकता है। परन्तु बूढ़े मन को उस ओर झुकाने का प्रयत्न किया जाय तो वे उस सत्सङ्ग को त्याग देते हैं।

६. मनुष्य का मन मानों सरसों की पोटली है, पोटली की सरसों यदि एक बार बिखर जाय तो इकट्ठा करना मुश्किल हो जाता है। वैसे ही मनुष्य का मन सम्हालना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है। बालक का मन बिखरा न होने के कारण बहुत ही जल्द स्थिर हो जाता है ; परन्तु बूढ़ों का मन, सोलह आना सन्सार में बंट रहने के कारण सन्सार से

हटा कर ईश्वर में स्थिर करना बड़ा ही कठिन कार्य हो जाता है।

७. सूरज निकलने से पहले यदि दही को मथा जाय तो बढ़िया मक्खन निकलता है, दिन चढ़ जाने पर वैसा मक्खन नहीं निकलता है ; ऐसे ही बाल्यावस्था में जो ईश्वर से अनुराग रखते हैं और साधन सिद्ध में लगे रहते हैं उनको ईश्वर अवश्य प्राप्त होता है ।

८. वासना शून्य मन कैसा है, जानते हो? जैसे सूखी दियासलाई। एक बार घिसने से ही तुरन्त ही जल जाती है और गीली होने पर घिसते घिसते टूट जाती है , परन्तु जलती नहीं। उसी प्रकार सरल सत्यनिष्ठ, और निर्मल स्वभाव वालों को एक बार उपदेश देने पर ही उनका मन ईश्वर के अनुराग में हो जाता है। विषय आसक्त पुरुषों पर हमारे उपदेशों का कोई फल नहीं होता है।

—o❀:❀o—

उत्तम भक्त

—o—o—

१. पत्थर हज़ारों वर्ष यदि पानी में पड़ा रहे तो भी पानी उसके अन्दर कभी नहीं घुसता है; पर मिट्टी का ढेला पानी लगते ही गल जाता है। जो विश्वासी भक्त हैं, वे हज़ारों विपत्तियों में पड़ने पर भी हताश नहीं होते; पर अविश्वासी मनुष्य का हृदय छोटे (सामान्य) कारण से ही टल जाता है।

२. प्रह्लाद की स्तुति से सन्तुष्ट हो कर भगवान् ने पूछा, 'तुम क्या वर चाहते हो?' प्रह्लाद ने कहा, "हे भगवन्! जिन्होंने मुझे कड़े कड़े कष्ट दिये हैं, उन्हें आप क्षमा कीजिये। उनको दण्ड देने पर आप ही को कष्ट सहना पड़ेगा। कारण यह है कि आप ही तो सर्व भूतों में विद्यमान् हैं।"

३. भक्त केशव चन्द्र के बारे में सुन कर परमहन्स देव जी की उनसे भेंट करने की बड़ी इच्छा

हुई। एक तालाब के किनारे भेंट होते ही परमहन्स देव जी बोल उठे "इन्हीं की दुम झड़ गई है!" यह सुन कर ब्राह्म समाजी भक्त हँस पड़े। केशव चन्द्र जी ने उनसे कहा, "आप लोग हँसिये नहीं। यह महात्मा जो कुछ कहते हैं, उसका अवश्य ही कोई गूढ़ तत्व है।" तब परमहन्स देव जी ने कहा, "मेंढक के बच्चे के जब तक दुम रहती है, तब तक वह पानी में ही रहता है। दुम झड़ जाने पर पानी और स्थल दोनों ही स्थानों में रह सकता है। उसी प्रकार से जब भगवान् के चिन्तन से सब अविद्या दूर हो जाती है, तब भक्त भगवान् में डूबा रह सकता है और साथ ही साथ सन्सार में भी विचरण कर सकता है।"

भिन्न भिन्न प्रकार के साधक

१. सन्सार में दो प्रकार के साधक दिखलाई देते हैं, जैसे बन्दर का बच्चा और बिल्ली का बच्चा। बन्दर का बच्चा पहले अपनी माँ को पकड़ता है, फिर माँ उसको सङ्ग लेकर जहाँ तहाँ घूमती है। बिल्ली का बच्चा केवल एक ही स्थान में रह कर म्याऊँ म्याऊँ करता रहता है। फिर उसकी माँ उसकी गर्दन पकड़ कर इधर उधर ले जाती है। उसी प्रकार ज्ञानी या कर्मी साधक अपनी चेष्टा द्वारा ईश्वर के नाम का प्रयत्न किया करते हैं। और भक्त साधक ईश्वर को ही अपना कर्त्ता धर्त्ता समझ कर उन्हीं के चरणों में भरोसा करते हुये बिल्ली के बच्चे की भाँति निश्चिन्त होकर राम नाम जपा करते हैं।

२. एक ही व्यक्ति जैसे किसी का बाप, किसी का

ताऊ, किसी का चाचा, किसी का मौसा, किसी का लड़का, किसी का दामाद और किसी का स्वसुर इत्यादि होता है। ऐसी स्थिति एक ही व्यक्ति की होने पर भी सम्बन्ध के भेद से उनमें भिन्न भिन्न प्रकार का अन्तर उपस्थित हो जाता है। उसी प्रकार उस सच्चिदानन्द की, भक्त-जन शान्त, दास्य, वात्सल्य और मधुर आदि भावों से नाना विचारों द्वारा उपासना करते हैं।

३. जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसा ही फल मिलता है अर्थात जो भगवान् को चाहते हैं, वे उन्हें प्राप्त भी होते हैं और जो उनके ऐश्वर्य की कामना करते हैं, वे केवल ऐश्वर्य को ही पाते हैं।

४. राजा के महल में पहुँच कर जो भीख माँगने की अभिलाषा से जाता है और वहाँ पहुँच कर आटा, चावल इत्यादि साधारण वस्तुओं की प्रार्थना करता है, वह निहायत मूर्ख है। राजाधिराज भगवान् के दरवाज़े पहुँच कर ज्ञान, भक्ति आदि रत्नों की प्रार्थना करने के स्थान पर जो अष्ट सिद्ध आदि किसी

४. कागज़ में यदि तेल लगा हो तो उस पर लिखा नहीं जा सकता है। वैसे ही जीव में जब कामिनी कञ्चन रूपी तेल लग जाता है तो त्याग रूपी खड़िये से घिसने पर ही साधन किया जा सकता है।

५. जो लोग स्वयम् तो धर्म की चर्चा करते ही नहीं वरन् दूसरों को ध्यान पूजा करते देख कर हँसी दिल्लगी उड़ाते हैं और धर्म और धार्मिक पुरुषों की निन्दा करते हैं। ऐसे पुरुषों का सङ्ग करना साधक के लिये सर्वदा अनुचित है। उनसे एक दम दूर रहना चाहिये।

६. गौओं के झुण्ड में यदि कोई दूसरा जानवर घुस जाय तो सब गौएँ मिलकर उस जानवर को सींग से मार मार कर भगा देती हैं। यदि कोई गाय आजावे तो आपस में शरीर चाटने लगती हैं। वैसे ही जब भक्त जनों में भेंट होती है तो वे आपस में धर्म की बातें किया करते हैं और परम सुख अनुभव करते हैं; उनका सङ्ग छूट जाने पर बड़ा दु:ख होता है। परन्तु कुजातीय पुरुष आजाने पर उनको

उसका सङ्ग करने में आनन्द नहीं मिलता है।

७. जो तालाब छिछला है, उसका पानी पीना हो तो ऊपर से धीरे धीरे ले लेना चाहिये। अधिक खलबलाने से नीचे का मैला ऊपर उठ कर सारे पानी को मैला कर देता है। ऐसे ही यदि सच्चिदानन्द लाभ करना चाहते हो तो गुरू के उपदेश में विश्वास करके धीरे धीरे साधन करो। व्यर्थ में केवल शास्त्र विचार अथवा तर्क वितर्क से यह छिछला मन मैला हो जायेगा।

८. मन और मुख (अर्थात् भीतर और बाहर) दोनों के एक करने का नाम ही साधन है। नहीं तो मुँह से तो कहते हैं, "हे भगवन्! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो" एवम् मन में विषय को सर्व मान कर बैठे हैं।

९. वासना का चिन्ह मात्र रह जाने पर भगवान् प्राप्त नहीं होते हैं। डोरे में यदि जरा भी गाँठ पड़ी हो तो सूई के छिद्र में नहीं डाला जा सकता

है। मन जब वासना रहित होकर शुद्ध रहता है तब सच्चिदानन्द लाभ होता है।

१०. जैसे हवा में हिलते हुये जल में परछाईं नहीं दिखलाई देती है वैसे ही मन के स्थिर हुये बिना भगवान् का प्रकाश नहीं होता है। साँस के लेने और निकलने के साथ साथ मन चञ्चल होता है। इसी लिये योगी पुरुष कुम्भक द्वारा मन को स्थिर करके भगवान् की ध्यान धारणा करते हैं।

११. सम्पूर्ण एकान्त स्थान में युवती स्त्री को देख कर जो पुरुष माता कह कर जा सकता है उसी को ठीक ठीक त्यागी कहना चाहिये और जो सभा में त्यागी बन कर रहे वह वास्तव में त्यागी नहीं है।

१२. अभिमान शून्य होना बड़ा ही कठिन है। प्याज़ लहसुन को कूट कर यदि किसी बर्तन में रक्खा जाय और फिर उस बर्तन को सैकड़ों बार धोया जाय तो भी उसकी गन्ध नहीं जाती है, उसी प्रकार अभिमान का चिन्ह कुछ न कुछ शेष ही रह जाता है।

१३. भगवान् कल्पवृक्ष हैं, कल्पवृक्ष से जो कुछ प्रार्थना की जाय वही प्राप्त होता है। अतः साधन भजन के द्वारा जब मन शुद्ध हो जाय तब खूब सावधानता से कामना त्याग करना चाहिये। कैसे, जानते हो? एक मनुष्य किसी समय घूमते घूमते किसी दूर देश में जा पहुँचा। मार्ग में धूप की तेजी से और मार्ग की थकावट से अत्यन्त थक जाने और पसीने से लतपत हो जाने से वह एक पेड़ के नीचे बैठ कर अपनी थकावट दूर कर रहा था। ऐसी स्थिति में वह सोचने लगा कि यदि सुन्दर शय्या मिल जाय तो खूब आराम से सोयें। पथिक यह नहीं जानता था कि वह कल्पवृक्ष के नीचे बैठा है। उसके मन में जैसे ही यह विचार आया तुरन्त सुन्दर शय्या सामने आ गई। पथिक अचम्भे से भर गया और अपने मन में सोचने लगा कि इस समय यदि एक स्त्री मेरे पैर दबाये तो बड़े ही सुख की निद्रा पाऊँ। यह सङ्कल्प होते ही तुरन्त एक युवती पथिक के पैरों के पास आ बैठी और पैर दबाने लगी। तब पथिक आनन्द से फूला न समाया। उसके बाद उसे खूब

भूख लगी ; तब वह कहने लगा कि कोई भोजन की वस्तु मिल जाय तो बड़ा अच्छा हो। ऐसा कहते ही वहाँ नाना प्रकार का भोजन उपस्थित हो गया। पथिक भोजन करने के पश्चात उस दिन की सब घटनाओं पर विचार करने लगा। ऐसे समय उसको अचानक विचार आया कि कहीं जङ्गल से एक शेर निकल पड़े तो क्या करूंगा। ऐसा विचार पैदा होते ही एक बड़ा भयानक शेर एक छलाँग में उस पर आ पड़ा और उसकी गर्दन पकड़ कर खून चूसने लगा अन्त में उसके जीवन का भी अन्त हो गया। इस सन्सार में जीव की भी ऐसी ही दशा हुआ करती है। ईश्वर उपासन करने पर विषय, धन, जन अथवा मान, यश की कामना करने पर यह वस्तुयें कुछ कुछ प्राप्त तो हो जाती हैं, परन्तु शेर का डर भी बना रहता है। आपत्ति, रोग, शोक, ताप, मान और अपमान इत्यादि के शेर असली शेर से कहीं अधिक कष्ट देते हैं।

एक मनुष्य के मन में अचानक वैराग्य भाव के

उदय होने पर उसने अपने घर वालों से कहा कि सन्सार मुझे अच्छा नहीं लगता है। अब मैं किसी निर्जन स्थान में रह कर उपासना करूंगा। उसके घर वालों ने उसके इस शुभ सङ्कल्प का समर्थन किया। वह मनुष्य घर से शीघ्र निकल गया और एक निर्जन स्थान में पहुँच कर घोर तपस्या करने लगा। इस प्रकार बारह साल साधन करने के पश्चात उसे कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हुई और वह घर लौट आया और घर को देखकर उसे बड़ा आनन्द हुआ; और बड़ी प्रसन्नता के साथ उससे बात चीत करते हुए लोग पूछने लगे कि इतने दिन तपस्या करने से तुमको क्या प्राप्त हुआ? तब वह मनुष्य थोड़ा मुस्कुराया और तुरन्त एक हाथी के पास जो उसके सामने आ रहा था जाकर उसे तीन बार छू कर कहने लगा, "हाथी तू मर जा" हाथी उसके छूते ही तुरन्त गिर पड़ा और मुर्दा सा हो गया। कुछ देर पश्चात फिर उसके शरीर पर हाथ रख कर उस मनुष्य ने कहा, "हाथी तू जीवित हो जा" तुरन्त हाथी जीवित हो गया।

इसके अनन्तर सामने नदी के किनारे आकर उसी प्रकार मन्त्र बल से नदी पार जा पहुँचा। उसके भाई बन्धु यह सब देख कर आश्चर्य से तो भर गये, मगर उन्होंने उस तपस्वी भाई से कहा, "भाई इतने दिन आपकी तपस्या व्यर्थ हुई; हाथी के मरने और जीवित होने से आपको क्या लाभ हुआ? और आपने बारह साल कठोर तपस्या करके नदी को पार करना सीखा है; हम तो एक पैसा खर्चने से ही पार हुआ करते हैं। इसलिये आपने व्यर्थ ही समय नष्ट किया है।" भाइयों की ऐसी बातें सुन कर उसको यथार्थ का ज्ञान हुआ।

१४. अपने को औरों से अधिक चतुर मानना उचित नहीं है। जैसे कौआ बहुत चतुर होता है किन्तु विष्ठा खाता फिरता है; इसी तरह इस सन्सार चक्र में जिनके दिन अधिक चालाकी करते बीतते हैं वे केवल ठगते फिरते हैं।

१५. श्री कृष्ण चन्द्र ने अर्जुन से कहा था कि हे अर्जुन! अष्ट सिद्धियों में से एक भी सिद्धि के

रहने पर तुम हमारे उस परम भाव का लाभ नहीं कर सकते। अतएव जो सचमुच भक्त व ज्ञानी हैं, वे किसी भी रूप में सिद्धि की कामना नहीं करते।

१६. लक्ष्मी नारायण नामक एक धनाढ्य व सत्सङ्गी व्यक्ति दक्षिणेश्वर में एक दिन ठाकुर का दर्शन कर रहा था। ठाकुर के साथ देर तक वेदान्त विषयक आलोचना हुई। ठाकुर के साथ धर्म प्रसङ्ग करने और उनकी वेदान्त सम्बन्धी आलोचना सुनने से वह बड़ा प्रसन्न हुआ। अन्त में ठाकुर के पास से विदा होने के समय बोला, "मैं दस हज़ार रूपया आपकी सेवा के लिये देना चाहता हूँ।" ठाकुर यह बात सुनते ही जैसे माथे पर दारुण आघात लगा हो, मूर्छित से हो गये। थोड़ी देर में महान विरक्ति का प्रकाश करते हुये बालक की तरह सम्बोधन करके उससे बोले, "साला, तुम हियाँ से अबी उठ जाओ, तुम हमको माया का प्रलोभन दिखाता हय।" उक्त मारवाड़ी भक्त खिन्न होकर ठाकुर से बोला, "आप अभी थोड़े कच्चे हैं।" इस पर ठाकुर ने

जिज्ञासा की कि कैसे कच्चा हूँ। मारवाड़ी भक्त बोला, "महा पुरुष लोगों की खूब उच्च अवस्था होने से त्याज्य ग्राह्य दोनों बराबर हो जाते हैं। कोई कुछ दे या ले, उससे उनके चित्त में सन्तोष या क्षोभ नहीं होता।" ठाकुर यह बात सुनकर कुछ हँसे और उसे समझाने लगे, "देखो, दर्पण में दाग़ होने पर जैसे ठीक ठीक मुख नहीं दिखाई पड़ता, उसी तरह जिसका मन निर्मल हो गया है उसमें कामिनी कञ्चन का दाग़ पड़ना ठीक नहीं है।" वह मारवाड़ी भक्त बोला, "अच्छी बात है हृदय आपकी सेवा करता है, उसी के नाम में यह रूपया सेवा के लिये रख दूं।" इस पर ठाकुर बोले, "न, वह भी नहीं होगा, कारण उसके समीप रहने पर यदि किसी समय मैं कहूँ कि अमुक को कुछ दे दो या अन्य किसी तरह हमारी खर्च करने की इच्छा हो, उस समय यदि वह देना न चाहे, तब सहज ही में यह अभिमान आ सकता है कि वह रुपया तो तुम्हारा नहीं है। वह तो हमको दे दिया गया है। यह अभिमान भी अच्छा नहीं है।" मारवाड़ी भक्त को ठाकुर की यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ

और ठाकुर के इस अदृष्टपूर्व त्यागभाव को देख कर अतिशय आनन्दित हो कर घर लौट गया।

१७. 'एक कोपीन के वास्ते'। एक साधू गुरुपदेश लेकर भगवान के साधन भजन के उद्देश्य से किसी ग्राम के समीप एक निर्जन प्रान्त में सामान्य पर्णकुटी बना कर उसमें बास करने लगा और साधन भजन करने लगा। वह रोज़ सबेरे उठ कर स्नान करके भीगा कपड़ा व कोपीन कुटी के पास एक लता पर सूखने को डाल देता था। साधु जब भिक्षा माँगा करता था उसी समय एक चूहा आकर उसकी कोपीन काट देता था। दूसरे दिन ग्राम में जाकर नूतन कोपीन माँग लाया करता था। कुछ दिन बाद साधु ने स्नान करके भीगी कोपीन को कुटी के ऊपर सुखा दिया और भिक्षा के लिये गाँव गया। भिक्षा के बाद कुटी में आकर देखा कि चूहे ने कोपीन के टुकड़े टुकड़े कर डाले हैं। वह यह देख कर मन में बड़ा विरक्त हुआ और सोचने लगा, "अब मैं कोपीन किससे माँगूँगा?" दूसरे

दिन गाँव में जाकर ग्रामवासियों से चूहे के उपद्रव की कथा कही। वे लोग सब वृत्तान्त सुन कर बोले, "आपको रोज़ रोज़ कोपीन कौन देगा? आप एक काम कीजिये, एक बिल्ली पालिये। उसके डर के मारे फिर चूहा नहीं आयेगा।" साधू उसी समय गाँव से एक बिल्ली का बच्चा लेगया। उस दिन से बिल्ली के भय से चूहे का उपद्रव बन्द हो गया। यह देख कर साधू ने आनन्द की सीमा नहीं रही। धीरे धीरे साधु उस बिल्ली को अधिक आदर व यत्न से पालन पोषण करने लगा और गाँव में जाकर बिल्ली के लिये दूध माँग कर उसे पिलाने लगा। कुछ दिन बाद एक व्यक्ति उनसे बोला, "साधु जी, आप को रोज़ दूध की ज़रूरत पड़ती है, दो चार दिन तो भिक्षा माँगने से मिल जायगा पर बारहों महीना आपको दूध कौन देगा। आप एक काम कीजिये, आप एक गाय पालिये, उसका दूध पीकर आप भी तृप्त होंगे और बिल्ली को भी पिला सकेंगे।" कुछ ही दिनों

में साधु एक दुधारू गाय ढूँढ़ लाया। अब साधु को दूध माँगने की जरूरत नहीं रही।

धीरे धीरे साधु उस गाय के चारे के लिये गांव गांव में भटकने लगा। तब गांव के लोगों ने उनसे कहा, "अपनी कुटी के निकट परती जमीन में आप चारा क्यों नहीं उगाते हैं? फिर आपको चारे के लिये माँगने की जरूरत न रहेगी।" तब साधु ने सब लोगों के परामर्श से निकटस्थ पृथ्वी पर चारा उगाना शुरू कर दिया। चारे के लिये धीरे धीरे उसको आदमी नियुक्त करना पड़ा। जब अनाज एकत्रित होने लगा तो बुखारी आदि तैयार करने में उसके दिन ठीक गृहस्थ की तरह व्यस्तता में कटने लगे। कुछ दिन उपरान्त उस साधु के गुरु वहाँ आ उपस्थित हुये। उन्होंने यह सब विषय वैभव देख कर एक नौकर से पूछा, "यहां एक त्यागी कुटी में रहते थे, बता सकते हो वे कहाँ हैं?" नौकर कुछ उत्तर न दे पाया। फिर उन्होंने उसी साधु की कुटी के सामने अपने शिष्य को देख कर जिज्ञासा की, "वत्स, यह सब क्या है।"

शिष्य अप्रतिभ हो कर अपने गुरु के चरणों पड़ा और कहने लगा, "प्रभु जी, यह सब एक कोपीन के वास्ते है।" साधु ने एक एक करके सम्पूर्ण वृत्तान्त गुरु के आगे वर्णन कर दिया। गुरु-दर्शन से उनकी सारी आसक्ति दूर हो गई और तत्क्षण उन्होंने सब विषय सम्पत्ति परित्याग कर गुरु का अनुगमन किया।

व्याकुलता

१. भगवान् के प्रति मन कैसा होना चाहिये? जैसे सती का मन पति की ओर, कृपण का धन की ओर, और विषयी का विषय की ओर होता है; ऐसे ही मन जिस समय भगवत के प्रति हो जायगा, उसी समय भगवान प्राप्त हो जायेंगे।

२. माँ के पाँच बच्चे हैं। उसने किसी को खिलौना, किसी को गुड़िया और किसी को खाना देकर भुला रक्खा है। उन में से जो बच्चा खिलौना फेंक कर माँ, माँ कह कर रोने लगता है, माँ झट उसे गोदी में उठा कर शांत करने लगती है। हे जीव, तुम कामिनी-काञ्चन में भूले हो। ये सब फेंक कर जिस समय ईश्वर के लिये रुदन करने लगोगे, उसी क्षण वे आकर तुम्हें गोदी में ले लेंगे।

३. ईसा एक दिन समुद्र की धारा में स्नान कर रहे थे। एक भक्त ने आके उनसे पूछा, "प्रभो, ईश्वर कैसे मिल सकता है?" उन्होंने तत्क्षण उसे जल में ले जाकर डुबा रक्खा। कुछ देर बाद हाथ पकड़ कर उठा कर उससे पूछा, 'तुम्हारी कैसी अवस्था हो रही थी?' भक्त ने उत्तर दिया, "प्राण अब गये, अब गये–ऐसे व्याकुल हो रहे थे।" तब प्रभु ईसा ने कहा, "जब भगवान के लिये तुम्हारे प्राण इतने ही व्याकुल हो जायेंगे, तभी उनके दर्शन होंगे।"

४. भगवान् को पाने के लिये व्याकुलता की बात पर परमहंस देव ने कहा कि, जब दक्षिणेश्वर के मन्दिर से सन्ध्या की आर्ती के घन्टे की ध्वनि आती थी तब मैं गङ्गा जी की धारा में खड़ा हो कर रोता रोता चिल्ला कर कहता था, "माँ! दिन तो चला गया, अब भी तुमको नहीं देख पाया।"

५. जिसे प्यास होती है, वह क्या गङ्गाजल को गँदला बता कर किसी तालाब में जाकर अपनी प्यास बुझाता है? इसी प्रकार जिसे धर्म की तृष्णा होती है, वह, यह धर्म ठीक नहीं है, वह धर्म ठीक नहीं है, इस प्रकार कह कर गोलमाल करता नहीं फिरता। तृष्णा होने पर ये विचार नहीं होते।

भगवत् कृपा

१. जैसे किसी कमरे का हज़ार वर्षों का अन्धकार एक बार एक दियासलाई के जलाने से भाग जाता है उसी प्रकार जीव का जन्म-जन्मान्तर का पाप भगवान् की एक बार की कृपा दृष्टि से दूर हो जाता है।

२. मलय पवन के लगने से जिन पेड़ों में कुछ सार है, वे सब चन्दन हो जाते हैं; किन्तु असार वृक्ष जैसे बाँस, केला आदि में कुछ असर नहीं होता। वैसे ही भगवत् कृपा पाकर, जिनमें कुछ सार है, वे मुहूर्त भर में महा साधु भाव से पूर्ण हो जाते हैं, किन्तु विषयासक्त असार मनुष्य पर सहज ही कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

३. छोटे छोटे बच्चे अकेले घर में भीतर बैठे अपने आप खिलौने से खेला करते हैं, उनके मन में कोई भय की भावना नहीं होती। किन्तु यदि माँ आजाय तो अपने सब खिलौने फेंक कर 'माँ माँ' कह कर गोदी में दौड़ जाता है। तुम लोग भी जन धन, मान, यश के खिलौने लेकर सन्सार में निश्चित होकर सुख से खेला करते हो, कोई भय-भावना नहीं होती। यदि आनन्दमयी माँ को तुम लोग एक बार भी देख पाओ, तो फिर तुम लोगों को धन, मान, यश अच्छे नहीं लगेंगे, सब फेंक कर उसकी गोद में दौड़ जाओगे।

४. बच्चों का कीचड़ में सनना स्वभाव सिद्ध होता है, किन्तु माँ बाप उनको गन्दा नहीं रहने देते। ऐसे ही जीव इस माया के सन्सार में पड़ कर कितना ही क्यों न मलिन होजाय, भगवान् उसके शुद्ध होने का भी उपाय कर देते हैं।

सिद्ध अवस्था

१. लोहा यदि एक बार स्पर्शमणि छूकर सोना हो जाय तो फिर उसे चाहे मिट्टी के भीतर दबाये रक्खो, चाहे कूड़े में फेंक रक्खो, रहेगा वह सोना ही। जिन्होंने सच्चिदानन्द को पा लिया है, उनकी भी ऐसी ही अवस्था है। वे लोग सन्सार में रहें या बन में रहें, उन्हें उससे दोष स्पर्श नही होता।

२. लोहे की तलवार को स्पर्शमणि छुवाने से सोने की तलवार हो जाय, और आकार-प्रकार तो वैसा ही रहता है, किन्तु उससे हिंसा का कार्य नहीं चल सकता। ऐसे ही भगवान के पाद पद्म स्पर्श करने पर मनुष्य के द्वारा और कोई अन्याय-कार्य नहीं होता।

३. किसी आदमी ने परमहँस देव से जिज्ञासा की, 'सिद्ध पुरुष होने पर कैसी अवस्था हो जाती है?'

उत्तर में उन्होंने कहा, 'जैसे आलू, बैंगन पक जाने पर नरम हो जाते हैं, वैसे ही सिद्ध पुरुष का स्वभाव भी नरम हो जाता है। उनका सब अभिमान चला जाता है।'

४. जहाज़ चाहे जिस दिशा में जाय, कम्पास का काँटा उत्तर दिशा में ही रहता है। इससे दिशा का भ्रम नहीं होता। मनुष्य का मन यदि ईश्वर की ओर रहे, तो फिर उसे कोई भय नहीं रहता।

५. जो जिस तरह की भावना किया करता है, उसकी सिद्धि भी उसी तरह की होती है।

६. मुक्त पुरुष सन्सार में किस अवस्था में रहते हैं, जानते हो? जैसे आँधी में जूठा पत्तल। अपने में कोई इच्छा या अभिमान नहीं रखता। हवा उनको जिस तरफ़ उड़ा ले जाय, उसी तरफ़ चले जाते हैं। वे कभी घूरे में, कभी अच्छी जगह में विचरते हैं।

७ परमहँस अवस्था जानते हो किसे कहते हैं? जैसे हँस को दूध व जल मिला कर दो तो

वह दूध दूध तो पी लेता है और पानी छोड़ देता है। ऐसे ही वे लोग भी सन्सार में सार भूत सच्चिदानन्द को तो ग्रहण करते हैं और असार को त्याग देते हैं।

८. पहले अज्ञान, उसके बाद ज्ञान। फिर जब सच्चिदानन्द मिल जाता है, तो नर ज्ञान व अज्ञान दोनों से परे चला जाता है। जैसे शरीर में काँटा चुभ जाने पर एक दूसरा काँटा लाकर उसे निकालते हैं, उसके बाद दोनों काँटों को फेंक देते हैं।

सर्व धर्म समन्वय

१. जैसे बिजली की रोशनी आती एक ही स्थान से है किन्तु शहर में वह नाना स्थानों में नाना भाव से जलती है, ऐसे ही नाना देश के नाना जाति के धार्मिक लोग उसी एक भगवान् के लिये यत्न करते हैं।

२. छत के ऊपर जाने के लिये जैसे जीना, बाँस, सीढ़ी आदि, नाना उपाय हैं, ऐसे ही एक ईश्वर की गोदी में पहुँचने के लिये अनेक उपाय हैं। प्रत्येक धर्म ही एक एक उपाय है।

३. ईश्वर तो एक है, उसके नाम अनन्त हैं और भाव अनन्त हैं। जो जिस नाम व जिस भाव से उसकी आराधना करते हैं, वह उसी नाम व उसी भाव से उसे दर्शन देता है।

४. जितने मत हैं उतने ही पथ हैं। जैसे इस मन्दिर में आने के लिये कोई नाव में, कोई गाड़ी में और कोई पैदल आता है, ऐसे ही भिन्न मतों के द्वारा भिन्न भिन्न लोगों को सच्चिदानन्द की प्राप्ति होती है।

५. माँ का प्यार सब बच्चों के प्रति समान रहता है, किन्तु किसी बच्चे को लीची, किसी को बताशा—ऐसे ही जिसे जो खाना आवश्यक समझती है, देती है। इसी तरह भगवान् भी विभिन्न साधक की शक्ति और अवस्था को देख कर साधन की व्यवस्था करते हैं।

६, महात्मा केशवचन्द्रसेन ने परमहँस जी से पूछा, "भगवान् तो एक है, फिर धर्म सम्प्रदायों में इतना पारस्परिक वादाविवाद क्यों दिखाई पड़ता है ?" परमहँस देव ने उत्तर दिया, "जैसे इस पृथ्वी पर लोग यह हमारी जमीन और यह हमारा घर है कह कर उसे घेर कर बैठ जाते हैं, किन्तु ऊपर वही एक अनन्त आकाश है, उसे कोई नहीं घेर सकता। ऐसे ही लोग अज्ञानवश अपने अपने

धर्म को श्रेष्ठ बताकर बेकार गोलमाल करते हैं; जब ठीक ठीक ज्ञान मिल जाता है, तब परस्पर विवाद नहीं रह जाता।

७. हिन्दुओं में नाना मत की कथायें पाई जाती हैं, उनमें से हमारे लिये कौन सर्व श्रेष्ठ है? हम कौन मत ग्रहण करें? पार्वती ने महादेव जी से प्रश्न किया, "भगवन्! सच्चिदानन्द रूप की चाभी कहाँ हैं?" महादेव जी ने उत्तर दिया, 'विश्वास।' मतों में कुछ नहीं धरा है। जो जिस किसी भी मन्त्र में दीक्षित हो, उसी का वह विश्वास सहित साधन करे।

८. जो लोग सङ्कीर्ण विचार के हैं, वेही दूसरों के धर्म की निन्दा करते हैं, और अपने धर्म को श्रेष्ठ बताकर सम्प्रदाय गढ़ते हैं; किन्तु जो ईश्वरानुरागी हैं, वे केवल साधन भजन किया करते हैं, उनके भीतर किसी तरह की दलबन्दी नहीं रहती। पुष्करिणी में कीचड़ जम जाता है परन्तु बहती नदी में ऐसा नहीं होता है।

९. जैसे एक पदार्थ है-देश, काल, पात्र के भेद से उसके भिन्न भिन्न नाम हो जाते हैं। हिन्दी में उसे जल कहते हैं, उर्दू में पानी कहते हैं, अँग्रेजी में 'वाटर' कहते हैं। एक दूसरे की भाषा न जानने के कारण कोई किसी की बात नहीं समझ पाता, किन्तु जान जाने पर भाव में किसी तरह का भेद नहीं होता।

१०. भगवान् का नाम व ध्यान करो, चाहे जैसे करो, होगा उससे कल्याण ही। चाहे मिश्री की थाल सीधी करके खाओ, चाहे आड़े ओर से खाओ, लगेगी वह मीठी ही।

युगधर्म

१. परमहन्स जी सदा कहा करते थे- " ताली बजा बजा कर सायं, प्रातः हरिनाम कीर्तन करो। इससे सब पाप, ताप चले जाँयगे। जैसे पेड़ के नीचे जाकर ताली बजाने से सब पक्षी उड़ जाते हैं, ऐसे ही ताली बजाकर नाम कीर्तन करने से भी देहरूपी वृक्ष के अविद्या रूपी पक्षी उड़ जाते हैं।

२. पहले सीधा सादा ज्वर होता था तो सामान्य कादा इत्यादि से ठीक कर लेते थे। जब मलेरिया ज्वर आरम्भ हुआ तो कुनैन वगैरह की पेटेण्ट दवाइयों का जन्म हुआ। पहले लोग योग, यज्ञ, तपस्या करते थे। अब कलि के जीवों का प्राण अन्नगत है, मन दुर्बल है। एक हरिनाम ही एकाग्र होकर जपने से सब सन्सार की व्याधियों का नाश हो जाता है।

३. जाने हुये या बिना जाने या भ्रान्ति में, किसी भी तरह भगवान् का नाम लेने से फल होगा। यदि कोई तेल मलकर खुद नहाने जाय, या किसी को जल में धक्का देकर गिराया जाय स्नान दोनों तरह ही हो जायगा और कोई घर में सोया है, उसके शरीर पर जल फेंक दो, तो उसका भी स्नान हो जायगा।

४. इस कलियुग में नारद का भक्तिमत ही प्रशस्त है। अन्यान्य युगों में नाना प्रकार के कठोर साधन के नियम थे। उन सब साधनों से इस युग में सिद्धि लाभ करना बड़ा कठिन है। एक तो जीव की आयु ही परम अल्प है, उसे मलेरिया रोग ही बश में कर लेता है। वह भला कठोर तपस्या किस तरह से करेगा?

विविध विषय

१. वास्तविक प्रचार, जानते हो, किस तरह का होता है ? लोगों को न भजाकर आप ही भज ले तो यथेष्ट प्रचार हो गया। जो अपने को मुक्त करने की चेष्टा करते हैं वे यथार्थ प्रचार करते हैं। जो आप मुक्त हैं, सैकड़ों लोग अपने आप उनके पास आकर शिक्षा लेते हैं। दृष्टान्तस्वरूप परमहन्स देव ने कहा, "फूल खिलने पर भ्रमर अपने आप आकर जुट जाते हैं।"

२. कलकत्ते का कोई विख्यात धनी परमहन्स देव जी के दर्शन करने आकर नाना प्रकार के कूट, तर्क पेश करने लगा। परमहन्स देव जी ने उससे कहा, "वृथा तर्क से क्या लाभ ? सरलता के साथ भगवान् की आराधना किये जाओ, तब तुम्हारा भला होगा।" इस बात से उस दम्भी व्यक्ति की

इच्छा न पूरी हुई। वह बोल उठा, "क्या आपने सब कुछ जान लिया है?" परमहन्स देव जी अति विनीत भाव से हाथ जोड़ कर उससे बोले, "मैं सचमुच कुछ नहीं जानता किन्तु जो झाड़ू लगाता है वह स्वयम् अपवित्र होने पर भी उस स्थान को स्वच्छ बना लेता है"

३. एक साध्वी भगवत्परायणा स्त्री सन्सार में रह कर पति-पुत्रों की सेवा करती थी और भगवान् का भजन करती थी। एक दिन रोगाक्रान्त होकर उसके पति ने प्राण त्याग कर दिये। पति का सन्स्कार हो जाने पर उसने हाथ की काँच की चूड़ी फोड़ कर सोने के कड़े पहन लिये। सब लोगों के पूछने पर कहा, "मेरे स्वामी की देह अब तक इस काँच की चूड़ी की तरह क्षणभन्गुर थी। उनकी अनित्य देह चली गई। अब वह क्षणभन्गुर नहीं रह गई, वह नित्य; अखण्डस्वरूप है। इसी लिये मैंने काँच की चूड़ी छोड़कर पक्का गहना पहना है।"

४. गङ्गाजल, जल नहीं है, श्री वृन्दावन की रज, धूल नहीं है और श्री जगन्नाथ देव का महाप्रसाद अन्न नहीं है। ये तीनों ब्रह्मस्वरूप है।

Printed at
The Mahendra Press,
Latouche Road, Lucknow.